राजेश विक्रांत
स्तंभकार, दैनिक दोपहर का सामना, मुंबई
मो. 9820120912
ई मेल- rajeshvikrant@gmail.com

"कोस कोस पर बदले पानी, चार कोस पर बानी की प्रासंगिकता और अवधारणा"

सन 1980 में एक हिंदी फिल्म आई थी 'मनपसंद'। अभिनेत्री टीना मुनीम यानी अब टीना अंबानी इसकी हीरोइन थी। यह फ़िल्म जार्ज बर्नाड शा के एक नाटक पर आधारित थी। शॉ ने 1912 में एक नाटक लिखा पिगमैलिऑन। 1956 में आई फिल्म 'माई फेयर लेडी' उसी पर आधारित है। बाद में मराठी के मशहूर लेखक पुरुषोत्तम लक्ष्मण देशपांडे ने शॉ के नाटक पर मराठी नाटक लिखा 'ती फुलराणी'। बासु चटर्जी ने इसी नाटक पर बनाई फिल्म 'मनपसंद'। एक जैसी इस कहानी पर उन दिनों हिंदी में 'मनपसंद' और 'हम तेरे आशिक हैं' दो फिल्में बनीं। इसके अलावा एक गुजराती नाटक 'संतू रंगीली' भी इसी कहानी पर खेला गया। 'मनपसंद' में टीना ट्रेन में एक फूल बेचने वाली लड़की के रूप में भाषा का व्यवहार करती है और भाषाविज्ञान के एक प्रोफेसर उनको भाषा पढ़ाने का प्रयास करते हैं। इसमें फूल बेचने वालों की भाषा को निम्न श्रेणी की भाषा माना गया है और उसी के अनुसार फूल बेचने वाले व्यक्ति को मंद बुद्धि का भी स्वीकार किया जाता है।

***

भाषा को लेकर ठीक इसी तरह एक अंग्रेजी फ़िल्म 'एजुकेटिंग रीटा' भी है। यह 1983 में आई ब्रिटिश कॉमेडी ड्रामा फिल्म है, जिसके निर्देशक लुईस गिल्बर्ट थे, पटकथा विली रसेल के 1980 के नाटक पर आधारित है। इसमें माइकल केन, जूली वाल्टर्स, माइकल विलियम्स और मॉरीन लिपमैन ने अभिनय किया है। इसमें

सुसान (जो शुरू में खुद को रीटा कहती है), एक 26 वर्षीय वर्किंग क्लास हेयरड्रेसर, अपने काम और सामाजिक जीवन की दिनचर्या से असंतुष्ट है; इसलिए वह एक दिन विद्यार्थी बन जाती है, उसके अध्यापक यह मानते हैं कि उसको सभ्य बनाने का एक ही तरीका है कि उसे सिर्फ शुद्ध भाषा सिखाई जाय।

ये दो उदाहरण भाषा की महत्ता को बताने के लिए पर्याप्त हैं। इन उदाहरणों से यह भी पता चलता है कि इंसान चाहे जिस रूप या भूमिका में रहे, उसके लिए भाषा अनिवार्य होती है।

भाषा की इस अनिवार्यता, प्रासंगिकता व अवधारणा को गहराई से समझने के लिए हमें रास्ता दिखाती है भारत की एक मशहूर कहावत- 'कोस-कोस पर बदले पानी और चार कोस पर बानी…' भारत जैसे बहुरंगी और विविधता से परिपूर्ण देश के लिए एकदम सटीक बैठती है। भारत की यह विविधता, जिसमें एकता समाहित है, आज पूरी दुनिया के लिए आकर्षण का केन्द्रबिन्दु बनी हुई है, और यह विविधता में एकता का ही करिश्मा है कि हमारा भारत अन्य देशों से श्रेष्ठ एवं महान की स्थिति में है।

20 फीसदी भाषाएं विलुप्त

भाषाओं और बोलियों की बात करें तो परिदृश्य उतार- चढ़ाव भरा नजर आता है। देश के मशहूर भाषा विचारक गणेश एन. देवी द्वारा सन 2010 में "भारतीय भाषाओं का लोक सर्वेक्षण" करवाया गया था। इससे देश में 780 भाषाओं व बोलियों की खोज हुई थी। देवी के अनुसार, "पिछले 50 वर्षों में कई बोलियां समाप्त हो चुकी हैं। आजादी के बाद से 300 भाषाओं का पता ही नहीं है। 97 बोलियां तो खत्म होने की कगार पर हैं। सर्वेक्षण के दौरान मुझे यह भी अनुभव हुआ कि हिमाचल प्रदेश की कई बोलियों में महज बर्फ के लिए 200 शब्द हैं। और तो और महाराष्ट्र के कई गावों में प्रचलन से बाहर हो चुकी पुर्तगाली बोली जाती है। छोटे से राज्य अरुणाचल प्रदेश में देश में सर्वाधिक मातृभाषाएं हैं।" यह ध्यान रहे कि पूरे देश में 1961 की जनगणना में 1652 मातृभाषाएं थीं तो 10 साल बाद हुई जनगणना में मात्र 108 ही बताई गई। इसका कारण यह है कि सरकार ने कहा कि उन भाषाओं का खुलासा न करे, जो दस हजार से कम लोग बोलते हैं।

दुनिया भर में बोली जाने वाली 25 फीसदी भाषाएं ऐसी हैं, जिन्हें एक 1000 से भी कम लोग बोलना जानते हैं। देश में फिलहाल 1365 मातृभाषाएं हैं, जिनका क्षेत्रीय आधार अलग-अलग है। हमारा भारत सिर्फ इन भाषाओं को ही नहीं खो रहा है, अपितु इनके साथ जुड़ी अपनी भाषाई विशेषताओं से भी दूर होता जा रहा है। इसे अगर वैश्विक परिदृश्य में देखें तो दुनिया भर में ऐसी 2500 से ज्यादाभाषाएं हैं, जो विलुप्त होने की कगार पर पहुंच गई हैं। पिछले 50 साल में भारत की लगभग 20 फीसदी भाषाएं विलुप्त हो गई हैं। प्रो. देवी के मुताबिक शहरीकरण और प्रवास की भागमभाग में करीब 230 भाषाओं का नामो- निशान मिट गया। शहरीकरण के विस्तार के साथ खानाबदोश आदिवासी समुदाय भी अपनी प्राचीन भाषाएं छोड़ते जा रहे हैं। भाषाओं का इतनी तेजी से खत्म होना चिंताजनक है। जब एक भाषा मर जाती है तो कुछ अपूरणीय मर जाता है।

'मील-मील पर बदले सभ्यता, चार मील पर संस्कृति'

"कोस-कोस पर बदले पानी, चार कोस पर बानी" अर्थात भारत में बोली जाने वाली भाषा पानी के स्वाद की भांति हर कुछ किलोमीटर पर बदल जाती है। तो इस बदलाव के सूत्र कहां हैं? और ये बदलाव नकारात्मक है या सकारात्मक, हमें इस पर भी विचार करना होगा। क्योंकि कभी- कभी बहुत छोटी भाषा में भी समर्थ साहित्य की रचना संभव हो जाती है। जैसे कि मराठी के विकास के प्रारंभ में ही "ज्ञानेश्वरी" की रचना हो गई थी। तमिल भाषा की कुछ कालजयी कृतियां बहुत पुरानी हैं। भाषा के समान भाव को ग्रहण करते हुए हमारे देश की संस्कृति एवं सभ्यता की विविधता के बारे में यह उक्ति सटीक बैठती है कि 'मील-मील पर बदले सभ्यता, चार मील पर संस्कृति'।

2001 की जनगणना में पता चला कि हमारे देश में 30 भाषाएं हैं, जिनमें से प्रत्येक, दस लाख से अधिक लोगों द्वारा बोली जाती हैं। ये 30 भाषाएं अपने आप में केवल एक ऐसी भाषाई खिड़की प्रदान करती हैं जिसके जरिए हम उन 122 भाषाओं को देख सकते हैं जो कम से कम 10,000 लोगों द्वारा बोली जाती है।

बोली-भाषा/ महत्व/ परिभाषा

संस्कृत के भाष् (व्यक्तायां वाचि) धातु से अ और टाप् प्रत्यय लगाकर भाषा शब्द बना है। इसके अर्थ बोली, वाणी, बानी हैं। भाषा का प्रमुख अर्थ बोली या वाणी है। विश्व में जहां भी इंसान रहता है, वह किसी न किसी भाषा का उपयोग जरूर अवश्य करता है। भाषा का प्रसाद केवल मनुष्य को ही मिला है

भाषा विचारों को प्रकट करने का उत्तम माध्यम है। भाषा ज्ञान की संवाहिका होती है । संसार में आज तक कोई इंसान ऐसा नहीं हुआ, जिसने खुद ब खुद भाषा सीख ली हो।भाषा के बारे में सबसे बड़ा सच यह है कि इंसान अन्य से सुनकर भाषा सीखता है। इंसान खुद न भाषा विकसित कर सकता है और न ज्ञानार्जन कर सकता है। यदि इंसान गुरु के बिना स्वयं ही भाषा-ज्ञान विकसित कर लेता, तो शिक्षकों व स्कूलों की जरूरत ही न होती। उस स्थिति में दुनिया में कोई भी अशिक्षित न होता। वास्तव में, गुरु के बिना भाषा का ज्ञान संभव ही नहीं है।हकीकत में भाषा ही मनुष्य को अन्य जीवधारियों से अलग करती है।

भाषा की परिभाषाएं निम्नवत हैं-

● भाषा वह साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर भली-भांति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार स्पष्टतया समझ सकता है। -कामता प्रसाद गुरु

● मनुष्य मनुष्य के बीच वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और गति का आदान-प्रदान करने के लिए व्यक्त ध्वनि संकेतों का जो व्यवहार होता है, उसे भाषा कहते हैं।- डॉ. श्यामसुन्दर दास

● मुख से उच्चारित होने वाले शब्दों, वाक्यों आदि का वह समूह, जिसके द्वारा मन की बात बताई जाती है, 'भाषा' कही जाती है।- रामचन्द्र वर्मा

● जिन ध्वनि-चिह्नों के द्वारा मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय करता है, उसे 'भाषा' कहते हैं। -डॉ. बाबू राम सक्सेना

● भाषा उन ध्वनि-समूहों को कहते हैं, जिनका प्रयोग मनुष्य द्वारा अपने भावों और विचारों को दूसरे पर प्रकट करने के लिए तथा दूसरों के भाव-विचारों को समझने के लिए किया जाता है।- डॉ. पृथ्वीनाथ पांडेय

● जिस साधन से हम अपने विचार या भाव दूसरों तक पहुंचा सकते हैं, वह 'भाषा' है।- डॉ. भोलानाथ तिवारी

भाषाओं में अंतर्संबध

भाषाओं में व्याप्त अंतर्संबध जानने के लिए जब हम दुनिया की कुछ भाषाओं की तुलना करते हैं, तब हमें पता चलता है कि उन भाषाओं की अक्षर ध्वनियां एक ही हैं। मसलन- 1. संस्कृत- अहमेकं पुस्तकं पठामि। 2. हिंदी- मैं एक पुस्तक पढ़ता हूं। 3. अंग्रेजी- आई रीड ए बुक।

उपरोक्त तीन भाषाओं के वाक्यों में क्रमशः ये अक्षरध्वनियां प्रयोग की गई है- प्रथम वाक्य में- अह अम् एक् अम् प्उ स् त् अ क् अम् प्अ आ इ। द्वितीय वाक्य में– म् ऐं एक् अप् उ स् त् अ क् अप् अ ढ् अ त् आ ह् ॐ। तृतीय वाक्य में- आई र, ई ड् अ ए व् उ क् अ।

इसका मतलब यह है कि तीनों भाषाओं में अक्षर-ध्वनियां एक ही हैं। लेकिन इसके साथ यह भी सच है कि इनकी वर्णमालाएं एक नहीं हैं। इसकी वजह से बदलाव की परंपरा में मोड़ आता रहता है।

हिंदी की प्रमुख बोलियां और उनका पारस्परिक संबन्ध

1. कौरवी 2. हरियाणवी 3. दक्खिनी। 1. ब्रजभाषा 2. बुंदेली 3.कन्नौजी। हिन्दी की ये सभी उपभाषाएँ व बोलियां परस्पर इतनी जुड़ी हुई हैं कि कभी कभी यह पहचानना कि वस्तुतः यह हमारी बोली नहीं है, मुश्किल हो जाता है।

इन बोलियों का मानक शैली से इतना नजदीकी संबन्ध है कि यह पहचानना कठिन हो जाता है कि फ़लां शब्द आखिर किस बोली का है, मसलन कौर, घालना, छोरी, चोंतरा, तत्ता (तप्त), न्यारा, बार (द्वार) आदि शब्द जहां ब्रज भाषा की धरोहर हैं, वहीं ये हरियाणवी और सुदूर दक्षिण की दक्खिनी तक में प्रयोग किए जाते हैं। इन सब बोलियों में आपस में भी अटूट संबन्ध है और मानक शैली के साथ ही बेहद साम्य है। इस बात पर 'फूलबन' की भूमिका में डॉ० बाबूराम सक्सेना ने लिखा है कि, "इन्हें हम इन बोलियों का प्रभाव न कहकर मूल बड़ी बोली का अंग ही कहेंगे क्योंकि परिनिष्ठित रूप धारण करने के पूर्व किसी भी भाषा में विकल्प रूप होते हैं और वे उसके अपने ही हिस्से हैं।" गोस्वामी तुलसीदास कृत श्री रामचरितमानस तथा सूरदास के पदों की लोकप्रियता इस तथ्य का ज्वलंत उदाहरण है। इसके साथ देखिए कि 1. अवधी 2. बघेली 3. छत्तीसगढ़ी। 1.भोजपुरी 2. मगही 3. मैथिली। 1. कौरवी 2. हरियाणवी 3. दक्खिनी। 1. ब्रजभाषा 2. बुंदेली 3. कन्नौजी। पश्चिमी हिन्दी- राजस्थानी हिन्दी- हाड़ी हिन्दी-1. मारवाड़ी

2. जयपुरी 3. मेवाती 4. मालवी। 1. कुमाऊँनी 2. गढ़वाली। आदि एक दूसरे से पूरी तरह से जुड़ी हुई हैं। क्षेत्र के हिसाब से इसमें अंतर तो है पर संस्कृति के धरातल पर ये अंतर कम ही दिखता है।

भाषाई बदलाव की प्रासंगिकता

किसी भी भाषा की जीवनी शक्ति और भावाभिव्यंजन क्षमता उसके निरन्तर प्रयोग और विकास पर निर्भर होती है। परिस्थितियों और सामाजिक आवश्यकता तथा माहौल से प्रभाव ग्रहण कर, परिवर्तन को न स्वीकार करने वाली भाषा और ज्यादा अव्यवहार्य होकर विलुप्त हो जाती है। हमारे देश में कई बोलियां और भाषाएं हैं, जिनमें से कुछ का अपना व्याकरण और वाक्य-विन्यास है, जिन्हें 'हिंदी' शब्द के तहत समूहीकृत किया गया है, जिनमें हरियाणवी, ब्रज, अवधी, भोजपुरी, बुंदेली, बघेली,कन्नौजी और राजस्थानी शामिल हैं। जनगणना के परिणामों के 'भाषा' खंड हमें बताते हैं कि ऐसी 40 बोलियां थीं जिन्हें 'हिंदी' के तहत वर्गीकृत किया गया था। यद्यपि एक हिंदी भाषी इनमें से कुछ भाषाओं को आसानी से समझ सकता है, लेकिन उनमें से प्रत्येक की अपनी एक पहचान है जो पूरी तरह से हिंदी पर निर्भर नहीं है।

ध्यान रखें कि भाषा की प्रकृति हमेशा परिवर्तनशील होती है। इसी को हम भाषा का विकास कहते हैं। यह विकास रूप और अर्थ दोनों में होता है। दरअसल, प्रत्येक भाषा के दो रूप होते हैं। पहला, नये बदलाव स्वीकार करता हुआ, नित्य-नया चोला धारण करता रहता है। दूसरा समय व जमाने की जरूरतों के अनुसार चलता रहता है। इसीलिए हरेक भाषा का एक रूप इतिहास वस्तु होता रहता है और दूसरा रूप जीवन के प्रवाह से कदमताल करते हुए आगे बढ़ता जाता है। भारत को एक "भाषाई सभ्यता" कहा जाता है इसलिए भाषा में बदलाव का क्रम चलता रहता है। दरअसल, जब हमारी संस्कृति प्रेम की हो, भाईचारे की हो तो भाषा में प्रेम व सद्भावना आ ही जाती है तथा जब भाषा प्रेम व सद्भावना से पगी होगी तो उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि निश्चित ही मजबूत होगी। अगर हम हिंदी भाषा की बात करें तो इसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में रत्नाकर के 'उद्धव शतक का पियों का मान है, कृष्ण के प्रति अटूट प्रेम है तो 'वसुधैव कुटुंबकम्' का उद्घोष भी है जो कि सारी दुनिया को, समस्त मानव समुदाय एक परिवार ही मानता है। भाषा के बहाने कभी कभार देश में उभरने वाले विवाद, अजनबीपन, संघर्ष, अलगाव, टूट, वैमनस्य तथा परस्पर भाईचारे के अभाव पर मीर तकी 'मीर' की ये पंक्तियां आज भी हमें भीतर तक झकझोरती हैं-

वजहे बेगानगी नहीं मालूम,
तुम जहां के हो वां के हम भी हैं।

यानी कि यहां तो हमारा परस्पर अजनबी होने का सवाल ही पैदा नहीं होता। हमारा घराना, हमारा खानदान, हमारे पुरखे सब यहीं के तो हैं। वैसे भी, भाषाओं व बोलियों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि इतनी व्यापक, विशाल, विस्तीर्ण, गहन, संवेदनशील व मानवीय है कि उसे सरलता से परिभाषित करना बहुत कठिन है। इस पृष्ठभूमि में वैदिक साहित्य, रामायण और श्री रामचरितमानस के गहन प्रभाव, महाभारत और महाभारतकालीन चरित्रों का प्रभाव, कबीर की सधुक्कड़ी भाषा और बेबाक बेलौस कथन अंदाज, नानक-दादू की बानी क्या क्या नहीं है।

अपनी भाषा मां के दूध की तरह नैसर्गिक और पौष्टिक

मातृभाषा की बात ही निराली है। अपनी भाषा मां के दूध की तरह नैसर्गिक और पौष्टिक होती है। किसी भी जीवित जाति और देश के लिए इससे बड़ा दुर्भाग्य क्या हो सकता है कि उसे मां के दूध का मूल्य और उसका महत्त्व समझाना पड़े। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के अनुसार, "मनुष्य के मानसिक विकास के लिए मातृभाषा उतनी ही जरूरी है, जितना कि बच्चे के शारीरिक विकास के लिए माता का दूध। बालक पहला पाठ अपनी माता से ही पढ़ता है, इसलिए उसके मानसिक विकास के लिए उसके ऊपर मातृभाषा के अलावा कोई दूसरी भाषा लादना मैं मातृभूमि के विरूद्ध पाप समझता हूं।"

अर्थात मातृभाषा किसी भी इंसान और समाज के लिए बेहद महत्वपूर्ण है। लेकिन दुखद सच्चाई है कि आज़ादी के अमृत महोत्सव वर्ष में भी हम अपने छोटे-बड़े व्यक्तिगत, सामाजिक और सरकारी कामकाज के लिए एक विदेशी भाषा- अंग्रेजी का प्रयोग करने के लिए अभिशप्त हैं।

अवधारणा

"कोस- कोस पर बदले पानी, चार कोस पर बानी" की अवधारणा के सिलसिले में 'यूनेस्को' की एक रिपोर्ट का उल्लेख करना सामयिक होगा। इस रिपोर्ट के मुताबिक दुनिया भर में लगभग 6000 भाषाएं हैं। जिनमें से करीब 2680 भाषाएं अपनी अंतिम सांसें गिन रही हैं यानी कि दुनिया की लगभग 43 फीसदी भाषाएं खत्म होने की कगार पर हैं। आज दुनिया भले हथेली पर सिमट गई है, लेकिन यह बदलाव भाषाओं और संस्कृतियों की विलुप्ति की वजह भी बन रहा है। एक अन्य आंकड़े के अनुसार हर महीने दुनिया भर से लगभग दो भाषाएं गायब हो रही हैं। अब सोचिए अगर इस तरह भाषाएं गायब होती रही या उन्हें बोलने वाले लोग नहीं बचें! तो फिर उन तमाम संस्कृतियों और सभ्यताओं का क्या होगा, जो इन्हीं भाषाओं पर निर्भर हैं?

हरेक भाषा की निरंतर प्रगति के लिए यह आवश्यक कि उसे स्वाभाविक रूप से आगे बढ़ने दिया जाए। उसके मार्ग में कृत्रिम अवरोध न उत्पन्न किए जाएं। भारत की सभी भाषाओं व बोलियों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि समृद्ध, कल्याणकारी व संवेदनशील है। फिर भी विवाद या आशंकाएं थमती नहीं हैं। फिर भी अनेक झंझावातों, अवरोधों आदि को चीरती हुई देश की सभी भाषाएं व बोलियां अपनी-अपनी ज़मीन पर मजबूती से खड़ी हैं और महाकवि अल्लामा इक़बाल के शब्दों को बड़े गर्व से दोहरा रही हैं-

कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी
बरसों रहा है दुश्मन दौरे जहां हमारा।

यानी कि भाषाओं, बोलियों अथवा साहित्यिक अभिव्यक्तियों के बारे में विचार करने पर पता चलता है कि हम भारतीयों को इस बारे में कोई चिंता करने की ज़रूरत नहीं है। हमारा संपूर्ण जाना-माना मध्ययुगीन साहित्य भक्ति रस से आप्लावित रहा है। सूरदास, तुलसीदास, कबीर, जायसी, रहीम और मीरा सभी ने अपनी बोली-बानी में प्रेम की साधना की है। शायर हफीज जालंधरी ने अत्यंत गहन, गंभीर और पते की बात को एकदम सरलता से व्यक्त करके अपना मंतव्य स्पष्ट कर दिया है-

हफीज़ अपनी बोली मोहब्बत की बोली

न हिन्दी, न उर्दू, न हिंदोस्तानी।

संदर्भ ग्रंथ

1- भाषा और मनुष्य, डॉ ओम शिवराज, सूर्य प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली-6, 1983
2- हिंदी की भगीरथ यात्रा, कन्हैया लाल गांधी, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली-2, 1998
3- हिंदी कार्यकुशलता, डॉ शेरजंग गर्ग, मेधा बुक्स, दिल्ली 2008
4- हिंदी भाषा स्वरूप और विकास, कैलाशचंद्र भाटिया/ मोतीलाल चतुर्वेदी, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली-2, 1989
5- हिंदी और भारतीय भाषाएं, भोलानाथ तिवारी/ कमल सिंह, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली-2,1987
6- सामयिक प्रयोजनमूलक हिंदी, पृथ्वीनाथ पांडेय, सुनील साहित्य सदन, नई दिल्ली, 2015

पत्र- पत्रिकाएं

इंडिया टुडे, आउटलुक, नेशनल एक्सप्रेस, अमर उजाला, दोपहर का सामना, वृत्त मित्र, विकलांग की पुकार